Indian J. Soc. & Pol. 06(01):67-72:2019

ISSN: 2348-0084(P)
ISSN: 2455-2127(O)

वैश्वीकरण की अवधारणा के विविध आयाम : एक विश्लेषण

रणजीत कुमार[1], धर्मेन्द्र प्रताप श्रीवास्तव[2]

[1]एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विभाग विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार, भारत

[2]प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान विभाग, श्री महंथ रामाश्रय दास स्नातकोत्तर महाविद्यालय भुड़कुड़ा गाजीपुर उ0प्र0 भारत

ABSTRACT

वैश्वीकरण की प्रक्रिया के प्रसार तथा इसके आयामों में मात्रात्मक और गुणात्मक भेद के आधार पर विद्वानों के मध्य मतैक्य का नितान्त अभाव है। एक समूह के विद्वानों का मत है कि वर्तमान में पश्चिम का विकसित स्वरूप गैर–पश्चिम द्वारा प्रेरित है। इस धारा के विद्वानों का मत है कि वैश्वीकरण न तो नई और न ही पश्चिम प्रेरित प्रक्रिया है। ये विद्वान मध्यकाल के पूर्व गैर–पश्चिमी देशों में विज्ञान और तकनीकी विकास पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस काल में चीन, अरब, भारत, तुर्की आदि देशों में विज्ञान और तकनीक का विकास हुआ। प्रिंटिंग प्रेस, गन पाउडर, लोहा, सस्पेन्शन ब्रिज, पतंग, चुम्बकीय सूई, पहिये और पंखे का आविष्कार आज से एक हजार वर्ष पूर्व चीन में हो गया था लेकिन इसका ज्ञान शेष विश्व में प्रसारित नहीं हो सका। इस काल में पश्चिमी देश इस क्षेत्र में अविकसित थे। उदाहरण के लिए पश्चिम में गणित के ज्ञान के पूर्व गैर–पश्चिमी देशों को गणित का ज्ञान था जिसकी पुष्टि भारत में पहली से छठी शताब्दी के बीच दशमलव की पद्धति के विकास और शून्य के ज्ञान द्वारा हो जाती है। अरब के गणितज्ञ मुहम्मद इबान मुसा–अल–ख्वारिज्मी द्वारा एल्गोरिद्म[1] पद्धति तथा एल्जेब्रा[2] शब्द का विकास किया गया। इसी प्रकार छापेखाने का प्रयोग चीन की देन है और पहली छापी गयी पुस्तक[3] संस्कृत में थी। इसका अनुवाद पांचवी शताब्दी में चीनी भाषा में किया गया। यहाँ से गणित, विज्ञान के इस ज्ञान का विसरण पश्चिम की ओर हुआ। जैसे दशमलव पद्धति का प्रसार अरब देशों से होता हुआ दसवीं शताब्दी के अन्त में यूरोप पहुँचा। इसी प्रकार एल्गोरिद्, एल्जेब्रा, छापेखाने आदि का ज्ञान ग्यारहवीं से चौदहवीं शताब्दी के मध्य यूरोप पहुँचा जिसका प्रभाव यूरोपीय पुनर्जागरण, धर्म सुधार तथा औद्यौगिकीकरण के रूप में दृष्टिगत हुआ जिसने यूरोप की जीवन पद्धति में आशातीत परिवर्तन किये। इस प्रकार मध्यकाल के पूर्व तक वैश्वीकरण की प्रक्रिया में विज्ञान और तकनीक का प्रवाह गैर–पश्चिम से पश्चिम की ओर रहा।

KEYWORDS: *वैश्वीकरण, ग्लोबलाइजेशन, मुक्त प्रतियोगिता, मुक्त बाजार*

शक्ति और सम्पन्नता को अर्जित करने के लिए राजनीति और अर्थशास्त्र वैधानिक माध्यम हैं। 'अर्थव्यवस्था का बाजारवाद और वैश्वीकरण' अर्थव्यवस्था के प्रचार के नये ढ़ंग हैं। वर्त्तमान समय में वैश्वीकरण कोई नया विचार नहीं हैं। मानव सभ्यता के उदय से यह प्रक्रिया अस्तित्वमान है। इसका प्रमाण मानव समूहों (आदिमानव और पारम्परिक समाजों के बाद से) में सामाजिक विभिन्नीकरण के बाद से पाया जाता हैं।

मध्यकाल के बाद यूरोप में कृषि क्षेत्र में बढ़ते वाणिज्यीकरण के कारण वैश्वीकरण का आरम्भ विदेशी व्यापार के रूप में हुआ । इसमें सिल्क मार्ग और व्यापारियों का बहुत बड़ा योगदान रहा।(वालेस्टर्न,1987) यद्यपि इस प्रक्रिया को स्पष्ट रूप में साम्राज्यवादी कहा गया क्योंकि बहुत से यूरोपीय राज्यों ने सोलहवीं शताब्दी में विश्व के बहुत से भागों को अपने राजनीतिक नियन्त्रण ओर प्रभाव में व्यापार की प्रक्रिया को सम्पादित किया। इन देशों में से अधिकांश की अर्थ–व्यवस्थाएं स्वायत्त और आत्मनिर्भर थीं। इस प्रकार अर्थ (इकोनोमी) वैश्वीकरण के उदय का प्रमुख प्रेरक रहा और इसकी उत्पत्ति यूरोप में पूँजीवाद का उद्भव थी। पूँजीवाद का प्रवेश इन क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं में हुआ। क्षेत्रीय अर्थव्यवस्थाओं में प्रवेश ने विश्व अर्थव्यवस्था में प्रवेश तक वृद्धि की। यह प्रक्रिया एक साथ न होकर अलग–अलग समयान्तरालों पर संपादित हुई।

इस प्रक्रिया को ब्रिटेन में होने वाले औद्योगिकीकरण से बल मिला जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राज्य द्वारा पोषित था।(ग्लिस,1980) व्यवसायी प्रवृत्ति द्वारा अपना औद्योगिकीकरण करने के बाद ब्रिटेन उदारवाद की ओर अग्रसर हुआ। एक सशक्त औद्योगिक शक्ति के रूप में ब्रिटेन ने और अधिक लाभ के लिए मुक्त व्यापार को अपनाया। यद्यपि कि ब्रिटेन ने उदारवाद का श्रेय, जितना अपेक्षित था, उससे अधिक लिया क्योंकि इसकी नीतियॉ भौगोलिक और राजनीतिक आधार पर निर्भर थीं।(गोवा, 1994) विशेष रूप से अल्पविकसित देशों के सन्दर्भ में यद्यपि कि ब्रिटेन उदारवाद का उपदेश देता था लेकिन इन देशों में आर्थिक प्रवेश के लिए राजनीतिक और सैनिक उत्पीड़न का भी सहारा लिया गया। इस प्रकार वैश्वीकरण की प्रक्रिया का आरम्भ सामान्य रूप से स्वायत्त आर्थिक शक्ति के प्रयासों से ही सम्भव नहीं हुआ बल्कि सैनिक शक्ति ने भी इसमें महत्वपूर्ण सेवक की भूमिका निभाई। अतः आर्थिक रूप से पिछड़े और राजनीतिक रूप से कमजोर देशों के लिए पहली चुनौती उनकी सुरक्षा की रही।

1: Corresponding Author

ब्रिटेन में बढ़ते औद्योगिकीकरण ने शक्ति और सम्पन्नता के कारण एक मौलिक भेद उत्पन्न कर दिया। आर्थिक कल्याण और सैनिक सुरक्षा ने अन्य यूरोपीय शक्तियों और विश्व के विभिन्न भागों में स्थित यूरोपीय उपनिवेशों को अपने सशक्त संरक्षणात्मक व्यावसायिक नीतियों के अन्तर्गत अपने स्तर के औद्योगिकीकरण के कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए उकसाया जिसको अलेक्जेन्डर हैमिल्टन और जर्मनी के फ्रेड्रिक लिस्ट ने बौद्धिक वैधता प्रदान की। लेकिन आर्थिक राष्ट्रवाद का यह विकल्प एशिया और अफ्रीका के अधिकांश देशों के लिए बन्द था क्योंकि उत्तरी अटलाण्टिक शक्तियों ने सैनिक शक्ति द्वारा इसे कुचल डाला था तथा उपनिवेशों को अर्थउपनिवेशों के रूप में खण्डित कर दिया था। इसका एक मात्र अपवाद जापान था क्योंकि एक तो वह यूरेशियन क्षेत्र के उत्तर–पूर्वी किनारे पर स्थित था अर्थात इन औद्योगिक शक्तिों से पर्याप्त दूरी पर था। दूसरा –जापान में भी औद्योगिकीकरण की दूर दृष्टि थी। यह बात रोचक है कि जापान में भी औद्योगिकीकरण का लक्ष्य सैनिक शक्ति द्वारा राष्ट्रीय सुरक्षा को सुनिश्चित करना था।

उत्तरी अटलांटिक राज्य नेपोलियन युद्ध की समाप्ति और प्रथम विष्व युद्ध के बीच के समय में वैश्वीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए सक्रिय थे। इस समय इन देशों में आन्तरिक शान्ति थी क्योंकि ये अपने आर्थिक और राजनीतिक वैशिष्ट्य के साथ विश्व के अन्य भागों में षासन करने में व्यस्त थे। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के विस्तार का काल प्रथम विष्व युद्ध के बाद माना जा सकता हैं। लेनिन ने यह बात कही थी कि प्रथम विष्व युद्ध इन साम्राज्यवादी शक्तियों के आपसी मतभेद का परिणाम था।(लेनिन,1974) लेकिन प्रथम विश्व युद्ध के बाद नई विश्व व्यवस्था का नेतृत्व कौन करेगा यह प्रश्न द्वितीय विश्व युद्ध तक अनुत्तरित रहा जिसकी पुष्टि इस काल में आने वाले आर्थिक और राजनीतिक संकटों से हो जाती है।

द्वितीय विश्व युद्ध तक आर्थिक एकीकरण का अर्थ राष्ट्र राज्यों के बीच होने वाले आर्थिक व्यापार से लिया जाता था। विश्व अर्थव्यवस्था में औद्योगिक उत्पादन राष्ट्रीय व्यवस्था में अधिक व्यवस्थित था जो वैश्विक बाजार से बहुत अधिक सम्बद्ध नहीं था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उन्नत औद्योगिक शक्तियों (विशेषकर अमेरिका) ने नई आर्थिक संस्थाओं (गैट और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक) को मान्यता प्रदान कर अपना प्रभुत्व स्थापित किया लेकिन साम्यवाद से मतभेदों के कारण द्वि–ध्रुवीय व्यवस्था के उदभव न वैश्वीकरण की अपेक्षित गति को बाधित किया। इस प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद और शीत युद्ध काल में वैश्वीकरण की प्रक्रिया को अपेक्षित सफलता नहीं मिली।

सोवियत संघ में साम्यवाद का पतन राजनीतिक और वैचारिक सन्दर्भों में एक युगान्तकारी परिवर्तन था। इससे सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप की केन्द्र नियोजित अर्थव्यवस्था का अन्त हो गया। इसके विपरीत पूँजीवादी व्यवस्था को गति प्राप्त हुई।(बाबू,1996)

विश्व में अमेरिका की आर्थिक और राजनीतिक प्रभावकारिता के संरक्षणात्मक ढ़ाँचे के अन्तर्गत सशक्त अमेरिकी निगमों ने नये बाजारों की खोज निजी हितों के लिए की । इन निगमों ने अपने मुख्यालयों की स्थापना विशेष रूप से यूरोप में की ताकि इनको अमेरिका स्थित मुख्यालय से संचालित किया जा सके। जिसके कारण अमेरिकी प्रभुत्व का विस्तार यूरोप में सम्भव हुआ।(यूएनडीपी रिपोर्ट 1999) इस प्रकार अमेरिका ने उदारीकरण के नाम पर अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के माध्यम से आर्थिक और राजनीतिक प्रभावकारिता स्थापित की। अतः मध्यकाल के बाद से पश्चिम में विज्ञान और तकनीक के क्रमिक विकास और शेष विश्व पर इसके बढ़ते प्रभुत्व के कारण वैश्वीकरण की प्रक्रिया का प्रवाह पश्चिम से गैर–पश्चिम देशों की ओर रहा। इस दूसरी धारा के विद्वान वैश्वीकरण की प्रक्रिया को पश्चिम की अमूल्य देन मानते हैं।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि हजारों वर्षों से वैश्वीकरण की प्रक्रिया परिवहन, व्यापार, सांस्कृतिक विस्तार, ज्ञान तथा तकनीक और विज्ञान के प्रसार द्वारा विष्व के विकास में अपना योगदान दे रही है। वैश्विक अन्तर्सम्बंध बहुधा बहुत से देशों की उन्नति में सहयोगी रहा है। यद्यपि कि वैश्वीकरण को पश्चिम प्रेरित व्यवस्था के रूप में देखा जाता है लेकिन वैश्वीकरण की यह प्रक्रिया निश्चित रूप से पश्चिम प्रेरित नहीं है। नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्यसेन इस प्रक्रिया को 'ग्लोबल हेरिटेज' (विश्व धरोहर) का नाम देते हैं। इसको विश्व व्यवस्था को साथ लेकर चलने की प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है। वैश्वीकरण को स्पष्ट करने की प्रक्रिया में पहला विचार यह है कि विश्व के सभी भागों में प्रत्येक व्यक्ति शान्तिपूर्ण ढ़ंग से एक दूसरे के सम्पर्क में आये । दूसरा विचार वैश्वीकरण की प्रक्रिया को लोकतन्त्र के लिए खतरा, श्रमिकों के हितो का भक्षक, वातावरणीय क्षरण का कारक और समुदायों की हानि के लिए उत्तरदायी मानता है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया का स्पष्टीकरण बहुत से विद्वानों द्वारा किया गया है। कुछ विद्वान इसे आर्थिक तो कुछ सामाजिक, कुछ राजनीतिक तो कुछ सांस्कृतिक वैश्विक एकीकरण की प्रक्रिया के रूप में स्पष्ट करते हैं। जैसे चार्ल्स डब्लू0 केली और विटकाफ आर0 यूजीन का मत है कि–वर्तमान वैश्विक एकीकरण की प्रक्रिया अर्थशास्त्र द्वारा निःसृत है लेकिन यह आर्थिक संकल्पना मात्र नहीं है अपितु सामाजिक, राजनीतिक, प्रशासनिक, तकनीकी और सांस्कृतिक एकीकरण की भी प्रक्रिया है।(चार्ल्स,1997) सभी का स्पष्टीकरण उपयुक्त प्रतीत होता हैं किन्तु कोई अपने आप में सम्पूर्ण नहीं है। यह स्पष्टीकरण 'हाथी और छः अंधों की कहानी के सादृश्य है। इस कहानी में प्रत्येक पात्र हाथी के स्वरूप का वर्णन करता है लेकिन इसके स्वरूप का

वर्णन करने वाले पात्र देखने में अक्षम हैं। अतः वे स्पर्श द्वारा इसका अनुमान लगाते हैं। हाथी का पूर्ण स्वरूप देखने में अक्षम होने के कारण उनके बीच आम सहमति नहीं बन पाती है। इसी प्रकार वैश्वीकरण की प्रक्रिया पर भी विद्वानों में सार्वभौम सहमति नहीं है क्योंकि वे वैश्वीकरण की प्रक्रिया के सम्पूर्ण स्वरूप का वर्णन करने में अक्षम हैं।

काबिलेगौर है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उदारीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए सैद्धान्तिक रूप से नव उदारवाद को बौद्धिक वैधता प्रदान की गयी। इसका मानक बाजार है और राज्य का बदलता अभिजन वर्ग ही इसका जन्मदाता है। नव उदारवाद राज्य की अयोग्यता को दूर करने के लिए विश्व अर्थव्यवस्था में इसके प्रवेश का समर्थन करता है।(जान एण्ड स्टीवर्ट, 1995) निजीकरण, वैश्वीकरण और उदारीकरण सामान्य रूप से सुनने में आते हैं। वास्तव में निजीकरण और वैश्वीकरण उदारीकरण में समाहित हैं। उदारीकरण की नीति को सैद्धान्तिक आधार बहुत से आपस में सम्बंधित साहित्य द्वारा प्रदान किया गया जिसमें नव दक्षिणपंथी विद्यालयों के विचार, सम्पत्ति संबंधी अधिकारों के साहित्य तथा संगठन और प्रबन्ध साहित्य का प्रमुख योगदान रहा है। इन सबमें चार नव दक्षिणपंथी विचारों का स्कूल महत्वपूर्ण रहा जिसमें फ्रिडमैन का शिकागो स्कूल; निस्कमैन, द्यूलेक और बुकनन का पब्लिक च्वायस स्कूल; हेयक का आस्ट्रेलियन स्कूल; गिल्डर और वैनिस्को का सप्लाई साइड इकोनोमिक स्कूल महत्वपूर्ण रहे। विचारों के प्रस्तुतीकरण में अंतर होने के बावजूद नव दक्षिणपंथी विचारों के स्कूल इस बात को स्वीकार करते हैं कि राज्य की सम्बद्धता एकाधिकार को जन्म देती है; विकल्प सीमित होते है; अनावश्यक सेवाओं का उत्पादन होता है और अकुशलता को बढ़ावा मिलता है। इस कारण नव दक्षिणपंथी विचारों का स्कूल राज्य को एक विनियामक व उत्पादक के रूप में सुधारने के प्रयास पर बल देता है।(लूईस, 1980)

उदारवाद के सन्दर्भ में नव उदारवाद को स्पष्ट करना आसान कार्य नहीं है। वास्तव में नव उदारवाद का आरम्भ बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से माना जाता हैं और इसको विस्तार सोवियत संघ के विघटन के पश्चात् प्राप्त हुआ। नव उदारवाद का उदय भी राज्य और बाजार के बीच सम्बंधों की स्थापना के साथ ही आरम्भ हुआ। लेकिन नव उदारवाद उदारवाद से कुछ भिन्न है। नव उदारवाद नये बाजार (विदेशी विनिमय और पूँजी बाजार वैश्विक रूप से जुड़े हुए हैं); नए उपकरण (विश्व व्यापार संगठन जो राष्ट्रीय सरकारों के उपर अपनी वैधता रखते हैं) बहुराष्ट्रीय कम्पनियां (जिनकी आर्थिक शक्ति बहुत सी सरकारों से अधिक है) आदि द्वारा उदारवाद से भिन्न है।

नव उदारवाद राज्य की भूमिका के प्रति अनिश्चितता का दृष्टिकोण रखते हैं। सामान्यतया, ये इस मत पर सहमति व्यक्त करते हैं कि विभिन्न हित समूह जो राजनीतिक व्यवस्था पर नियन्त्रण रखते हैं वे समाज का ही शोषण करते हैं। नव उदारवाद अर्थव्यवस्था पर राजनीतिक नियन्त्रण का अंत चाहता है। कुछ महत्वपूर्ण लक्ष्य जैसे– राज्य का न्यूनतम हस्तक्षेप, योग्यता, लोकतन्त्रीकरण की प्रक्रिया का समर्थन और बाजार आधारित प्रक्रियाओं की पारदर्शिता इसके विकासवादी लक्ष्यों के प्रमुख तत्व हैं।

तात्विक रूप से नव उदारवाद निजी उपक्रमों और वैश्वीकरण की वैधता से सम्बंधित है। यह बाजार आधारित अर्थव्यवस्था का पोषक है। स्टिफेन गिल ने यह स्पष्ट किया है कि किस प्रकार नव उदारवाद बाजारवादी सभ्यता को प्रोत्साहित करता है।(स्टीफेन, 1995) बाजारवादी व्यवस्था पूँजीवादी विकास की कल्पना पर आधारित होती है और बाजार को जोड़ने वाले तत्वों जैसे– पूँजी का जमाव, वैधता, खपत इत्यादि कार्यो को वैधता प्रदान करती हैं। संक्षेप में, नव उदारवाद का लक्ष्य वैश्वीकृत उदारवाद है और इस लक्ष्य को परा–राष्ट्रीय (ट्रॉंस–नेशनल) पूँजी द्वारा शक्ति प्राप्त होती है। अतः नव उदारवाद परा–राष्ट्रीय गतिशील पूँजी के हितों की रक्षा करता है।

परा–राष्ट्रीय गतिशीलता के हितों की रक्षा करने में नव उदारवादी हमेशा पूँजी के प्रवाह के लिए आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों की पुनर्संरचना का प्रयास करते रहते हैं। इस प्रकार नव उदारवाद एक परा राष्ट्रीय संकल्पना है। 1980 के दशक में यह विश्व पूँजीवाद के केन्द्र में शामिल नहीं थी बल्कि चिली और आस्ट्रेलिया तक ही सीमित थी।(ओवरविक,1993) राजनीतिक परिदृश्य में नव उदारवाद और परम्परावादी तत्वों के बीच असहज सम्बन्धों को व्यक्त करता है। अपने उदारवादी स्वरूप में, नव उदारवाद व्यक्ति के चुनाव की स्वतन्त्रता, बाजार, समाज, यथास्थितिवाद और न्यूनतम सरकार, सामाजिक सर्वसत्तावाद, अनुशासित समाज, पदक्रम और अधीनता तथा राष्ट्र को महिमा मण्डित करता है।(वही) नव उदारवाद जो उदारवादी लोकतन्त्र और मुक्त बाजार व्यवस्था द्वारा पहचाना जाता है की अपनी आन्तरिक सीमायें हैं। इस प्रकार का विकास गरीब लोगों की सुरक्षा और संरक्षण के अपने वादे पर खरा नहीं उतरता। नव उदारवादी राज्य की अयोग्यता पर प्रश्न उठाते रहते हैं। यह प्रवृत्ति बाजार को राज्य से स्वायत्त प्रदर्शित करती है। इस प्रकार नव उदारवाद को सोलहवीं शताब्दी के उदारवाद का एक नये आवरण में पुनरागमन कहा जा सकता है।

आज जब हम वैश्वीकरण के राष्ट्र और राज्यों पर पड़ने वाले प्रभावों के विषय में विचार करते है तो सामान्य रूप से हम उसके सैद्धान्तिक पक्ष के विषय में अधिक सोचते हैं। इस रूप में राजनीतिक वैश्वीकरण कम या अधिक लोकतान्त्रिक प्रशासन के भविष्य से जुड़ा है। यह इस बात को स्पष्ट करता है कि किस प्रकार लोकतान्त्रिक परिवर्तन की प्रक्रिया लोकतान्त्रिक देशों के भविष्य से जुड़ी है। इसको स्पष्ट करते हुए हण्टिंग्टन लिखता है कि –स्वतन्त्रता, शान्ति और स्थायित्व लोकतन्त्र के भविष्य को

निर्धारित करते हैं।(हण्टिंगटन,1991) यह विदित है कि लोकतन्त्र जो तानाशाही का विरोधी है एक मानसिकता ही नही बल्कि मानव मात्र को स्थायी रूप से निर्देशित करने वाली प्रवृत्ति भी है। इतिहास गवाह है कि लोकतान्त्रिक मूल्य अन्य मूल्यों की अपेक्षा अधिक स्थायी और आकर्षक रहे है। यद्यपि कि सर्वाधिकारवादी और सर्वसत्तावादी कालों में वैधता के प्रश्न पर इसने अपने अस्तित्व के लिए पर्याप्त समय और उर्जा लगायी है। आधुनिक लोकतंत्र राष्ट्र– राज्यों का लोकतन्त्र है और इसका अस्तित्व राष्ट्र– राज्यों के अस्तित्व के साथ जुड़ा हुआ है।(वही)

राजनीतिक वैश्वीकरण के प्रति भिन्न–भिन्न प्रकार के विचारों के कारण आधुनिक राष्ट्र राज्यों के प्रति विश्वास के प्रश्न पर मतैक्य कायम नहीं हो पाता। इसके दो कारण हैं – 1. क्षेत्रीय सीमाओं के पार पूँजी, धन और तकनीक के अवरोध रहित संचरण के राजनीतिक कारण क्या हैं? 2. क्या यह प्रवाह राष्ट्र राज्यों के समक्ष गम्भीर चुनौतियां पैदा कर सकता है? ये प्रश्न राष्ट्रीय सरकारों के आर्थिक नीतियों पर ढीले नियन्त्रण के कारण उत्पन्न हो जाते हैं। इसके बाद महत्वपूर्ण प्रश्न राज्यों की सम्प्रभुता, सरकारी संगठनों के बढ़ते प्रभाव और वैश्विक प्रशासन से सम्बंधित हैं।

आज के वैश्विक संक्रमणकाल और भविष्य में उत्पन्न होने वाली विश्व व्यवस्था के बीच सह–सम्बन्ध स्थापित करना कैसे सम्भव है? वैश्वीकरण की प्रक्रिया से उत्साहित विद्वानों का मत है कि राजनीतिक वैश्वीकरण की प्रक्रिया बाजार के विस्तार से जुड़ी है। इसके लिए संचार और तकनीक (विशेष रूप से इन्टरनेट) के प्रयोग ने एकीकृत वैश्विक बाजार को जन्म दिया है।(राव,1998) इस विचार के समर्थक मानते हैं कि राजनीति की अपेक्षा आर्थिक शक्ति अधिक प्रभावशाली है। आर्थिक स्वहित और नयी तकनीकी पद्धतियों की खोज एक साथ नयी विश्व व्यवस्था के लिए उत्तरदायी है जिसमें सरकार का कार्य काफी सीमित होगा और ये मुक्त बाजार की शक्तियों के सहयोग का कार्य करेंगी। जैसा कि लावेल ब्रायन और डायना फरेल मानते हैं कि सरकार का कार्य स्वतः सीमित हो जायेगा और बाजार वैश्विक पूँजीवाद के लिए सर्वोत्कृष्ट प्रचालक का कार्य करेगा।(ब्रायन एण्ड फेरेल,1987) जापानी रणनीतिकार इस बात की पुष्टि करते हैं कि वैश्विक अर्थव्यवस्था में राष्ट्र राज्य की भूमिका अप्रासंगिक हो गयी है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि बहुत से नव उदारवादी विद्वान राजनीतिक वैश्वीकरण के आर्थिक रूपान्तरण को स्वीकार करते हैं। उदाहरण के लिए–कोरोलिन थामस का मानना है कि उत्तम राजनीति वैश्विक प्रक्रिया का परिणाम है जो पूँजीवाद के पुनर्जीवन के साथ संचालित होगी जिसमें पूँजी का जमाव राष्ट्रीय स्तर पर न होकर वैश्विक स्तर का होगा।(कैरोलिन,1997) इस प्रकार वह विचार का समर्थन करती हैं कि वैश्वीकरण को उस प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है जहाँ शक्ति वैश्विक समाज के निर्माण में स्थित होती है।

लेकिन दूसरे समूह के विद्वान इससे मतभेद रखते हैं कि समाज में प्राकृतिक रूप से आर्थिक परिवर्तन होते हैं। ये विद्वान वैश्वीकरण के सफल संचालन के लिए राजनीतिक तत्व को केन्द्र में रखते हैं। इनका विचार है कि यदि आर्थिक वैश्वीकरण विभिन्न प्रकार के सामाजिक रूप से विचार करें तब बदलती राजनीतिक प्राथमिकताएँ विभिन्न प्रकार के सामाजिक लक्ष्यों के निर्माण में सक्षम होंगी। जैसे कि डेनियल सिंगर कहते हैं कि वैश्विक आर्थिक संक्रियाओं के विस्तार की जड़ें न तो बाजार के प्राकृतिक कानूनों और न ही सूचना तकनीक के विकास का परिणाम हैं बल्कि सरकार द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी पर अवरोध न लगाने के निर्णयों पर निर्भर हैं। यही कारण है कि एक बार जब 1980 में ये निर्णय लागू हुए तो तकनीक स्वतः आ गयी और तकनीक ने असीमित अनुपात में पूंजी को गति प्रदान करने में सहायता प्रदान की। कुल मिलाकर सिंगर का यह कहना है कि वैश्वीकरण की वर्तमान स्थिति में भी राष्ट्र –राज्य अपनी पर्याप्त प्रासंगिकता रखते हैं।

जे0 ए0 शोलेट का मानना है कि वैश्वीकरण सापेक्षिक अ–क्षेत्रीयकरण की क्रमिक प्रक्रिया को इंगित करता है जिसके कारण लोगों के बीच पराक्षेत्रीय सम्बन्धों में वृद्धि होती है।(शोलेट,2000) अ– क्षेत्रीयकरण से शोलेट का तात्पर्य है कि अपने क्षेत्र में आर्थिक क्रियाओं को संचालित करने की शक्ति के साथ राज्य वैश्विक क्रम से भी प्रभावी सामन्जस्य स्थापित करता है। यदि राजनीतिक निर्णय विश्व परिदृश्य में अर्थव्यवस्था को संचालित करने तथा निजीकरण और वैश्वीकरण के लिए उत्तरदायी हैं तो अन्य प्रकार के राजनीतिक निर्णय इसको विपरीत दिशा में भी घुमा सकते हैं। यह निश्चित है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया में राज्यों के द्वारा अपनी सीमाओं को परा–राष्ट्रीय प्रवाहों के लिए पारगम्य बनाने का लाभ होगा। संक्षेप में, इस समूह के विद्वानों का स्पष्ट मत है कि राजनीति एक प्रामाणिक संवर्ग है जिसमें वैश्वीकरण की प्रक्रिया पर एक निश्चित समझ होनी चाहिए।

तीसरा समूह वैश्वीकरण की प्रक्रिया को राजनीतिक और तकनीकी कारकों द्वारा प्रोत्साहित मानता है। जैसे कि जॉन ग्रे वैश्वीकरण को दीर्घकालिक तकनीक चालित प्रक्रिया मानते हैं जिसका स्परूप विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली देशों के राजनीतिक निर्णयों द्वारा सुनिश्चित होता है। मैनुअल कैस्टल ने तकनीक को राजनीति से जोड़कर वैश्वीकरण की प्रक्रिया को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इस स्पेनी समाजशास्त्री ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करने वाली शक्तियों को तीन भागों में बाँटा है– 1. सूचना 2. तकनीकी क्रान्ति 3. पूँजीवाद (कैस्टल,1996)। कैस्टल ने सूचना तकनीक पर आधारित नये सूचनात्मक पूँजीवाद को सामाजिक–आर्थिक पुनर्सरंचना की

प्रक्रिया को लागू करने के लिए एक अकाट्य यन्त्र माना है। इस परिदृश्य में वह दो बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करता है। पहला–एक सम्प्रभु इकाई के रूप में राष्ट्र– राज्य का संकट और दूसरा क्षेत्रीय और स्थानीय सरकारों यहां तक कि विभिन्न परा–राष्ट्रीय संस्थाओं की शक्ति में गिरावट।

दूसरी ओर कैस्टल राष्ट्र –राज्यों पर एक प्रामाणिक एजेन्सी के रूप में प्रकाश डालता है जो बदलते विश्व के शक्ति सम्बंधो को प्रोत्साहित करता है। इस प्रकार नये कर्ता उत्पन्न होते रहते हैं और नयी लोक नीतियां लागू होती रहती हैं। इस प्रकार एक नयी संस्कृति का विकास भी होता रहता है जो नये सामाजिक सम्बंधों को स्पष्ट करती है।(वही) वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में कैस्टल, एफ0 डी0 ग्रे से अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण रखता है। वह कहता है कि मानव मात्र की समस्याओं का निदान विज्ञान और उसकी तार्किकता ने अपनी सीमाओं के अन्दर कर दिया है।(वही)

कुल मिलाकर वैश्वीकरण के विभिन्न आयामों को लेकर दुनिया भर में चल रहे विमर्श एवं बहस को संक्षेप में इस प्रकार सूत्रबद्ध किया जा सकता है–

- अध्येताओं के एक हिस्से की मान्यता है कि राज्य की संस्था में आने वाला परिवर्तन विश्व अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण के बजाय कई राज्यों के भीतर हो रहे घटनाक्रम का परिणाम होगा। ये राज्य नागरिक कलह, सामाजिक टकराव, व्यापक भ्रष्टाचार के साथ–साथ विकास के लिए नाकाफी बुनियादी सुविधाओं के शिकार हैं। ये विद्वान मानते हैं कि वैश्वीकरण के मुख्य रूझान न तो गरीबों की समस्याओं से प्रभावित होते हैं और न ही गरीबों की रोजमर्रा की जिंदगी को प्रभावित करते हैं। खास बात यह है कि इस तरह का चिंतन यह जरूर मानता है कि गरीबों के आंदोलन राज्य की संस्था को अपने पक्ष में काम करने के लिए दबाव डालते रहेंगे जिसके नतीजे के तौर पर राज्य को वैश्वीकरण के खिलाफ संघर्ष करना पड़ेगा और इसी टकराव से भविष्य का राज्य निकलेगा।
- अध्येताओं का दूसरा हिस्सा मानता है कि वैश्वीकरण एक विचारधारात्मक परियोजना है और उसी के मुताबिक ऐतिहासिक रूप से विकसित हो रहा है। राज्य की संस्था का उससे टकराव नहीं है, बल्कि वह इस प्रक्रिया का ही एक हिस्सा है। वैश्वीकरण राज्य की क्षमता में कटौती करते हुए लग सकता है पर वह राज्य को पूरी तरह से शक्तिहीन नहीं करना चाहता। वैश्वीकरण ने जो भी परिवर्तन किये हैं, वे राज्य की संस्था द्वारा उठाये गये कदमों या उसकी निष्क्रियता का परिणाम भी हैं।
- तीसरा विचार यह है कि राज्य की संस्था के कुछ हिस्सों का पहले से ही काफी ज्यादा 'अंतर्राष्ट्रीयकरण' हो चुका था, इसलिए वे वैश्वीकरण से ज्यादा प्रभावित हो रहे हैं। आर्थिक गतिविधियों में राज्य के हस्तक्षेप पर भूमंडलीय ताकतें इसीलिए निगरानी रख पा रही हैं, क्योंकि वित्तीय पूँजी का चरित्र शुरू से ही अंतर्राष्ट्रीय था और उसे आसानी से ढ़ाँचागत समायोजन कार्यक्रम और डब्ल्यूटीओ–गैट समझौते जैसी व्यवस्थाओं के अधीन लाया जा सकता था। संभवतः यह विचार मानता है कि राज्य अन्य क्षेत्रों में अपने वैश्वीकरण को नियंत्रित और संयमित कर सकता है।
- चौथा विचार यह है कि वैश्वीकरण के तहत भविष्य के राज्य की कल्पना करते समय हमें सिर्फ शोषक–शोषित और गरीब–अमीर देशों के संदर्भ में ही नहीं सोचना चाहिए, बल्कि लोकतांत्रिक, विविधतामूलक, लैंगिक, नस्ली और पर्यावरण – पारिस्थितिकीय परिप्रेक्ष्य पर भी ध्यान रखना चाहिए। वैश्वीकरण को विश्लेषित करते समय उसके आलोचकों की एक प्रमुख समस्या यह होती है कि वे साम्राज्यवाद बनाम अन्य की मोर्चेबंदी का कार्यक्रम देते हैं और इन आयामों की उपेक्षा करते हैं।
- पाँचवाँ विचार यह है कि वैश्वीकरण का कोई विकल्प नहीं है। हर राज्य को उसके सामने घुटने टेकने ही पड़ेंगे। भविष्य का राज्य और भविष्य का लोकतंत्र नियोक्लासिकल आर्थिक सिद्धांत के तहत ही गठित होगा। मौजूदा राज्यों के सामने जो नीतिगत कार्यक्रम रखा जा रहा है वह इसी किस्म का है। उन्हें सबसिडी खत्म करने, विदेश व्यापार पर किसी भी किस्म की बंदिश हटाने, निजीकरण को हर कीमत पर तेज रफ्तार से चलाने, विदेशी पूँजी के लिए दरवाजे पूरी तरह से खोलने और राष्ट्रीय महत्त्व के कई प्रश्नों को ऐसे अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर हल करने के लिए लाने का दबाव बढ़ रहा है जिनमें गरीब देशों की नुमाइंदगी पर्याप्त नहीं है। यह प्रक्रिया राज्य के प्राधिकार को वैश्वीकरण के नीतिगत ढाँचे के तहत लाती जा रही है। इसे राज्य का कमजोर रूप न समझ कर आज के जमाने के राज्य के रूप में ग्रहण करना चाहिए।
- छठा विचार यह है कि लोकहितकारी राज्य की विफलता के कारण वैश्वीकरण की प्रक्रिया को भारी समर्थन मिला है। प्रबंधकीय और प्रौद्योगिकीय प्रतिमान राज्य और समाज पर हावी हो गया है जिससे 'अराजनीतिक राजनीति' मजबूत हुई है। यह प्रतिमान बहुलता और विविधता के प्रति असहिष्णु है, इसलिए वह जातीय राजनीति, बहुसंख्यकवाद और कुछ देशों में सांप्रदायिकता के उभार के रूप में खुद को अभिव्यक्त करता है। यह प्रतिमान उदारतावादी लोकतंत्र की संस्था पर दबाव डालता है कि वह अपनी लोकहितकारी प्रवृत्तियों को त्याग कर बाजार के एजेंट की भूमिका निभाने पर सहमत हो जाय। इस प्रतिमान ने राजनीति के लोकलुभावन पक्षों को बेअसर कर दिया है। अब सड़कों पर जुलूस निकालने और 'संघर्ष करने' का लाभ विधायिकाओं के चुनाव जीतने में नहीं निकलता। पुराने किस्म के मजदूर आंदोलन और किसान आंदोलन या छात्र राजनीति का जमाना लद गया है।

राज्य और वैश्वीकरण के अंतर्संबंधों पर चल रही बहस जिस जगह थमती है, वहीं से सभ्यता, संस्कृति और केंद्र का सवाल उभर कर आ जाता है। वैश्वीकरण के शुरूआती दौर में 'ग्लोबलाइजेशन' को 'अमेरिकीकरण' का पर्याय बताने में कोई संकोच नहीं किया गया था। अमेरिका के वर्चस्व को मान्यता आज भी आम है। पर कुछ विश्लेषकों को लगने लगा है कि केंद्र होते हुए भी अमेरिका आज वैश्वीकरण का वैसा निर्विवाद केंद्र नहीं है जैसा कभी उन्नीसवीं सदी में ब्रिटेन हुआ करता था।

इन चिंतकों के अनुसार अमेरिका सर्वोच्च फौजी ताकत तो है, पर उसकी आर्थिक हैसियत चुनौतियों से घिरी है। वैश्वीकरण के समर्थक अर्थशास्त्री जेफ्री साक्स और उनके ही जैसे कई सिद्धान्तकारों के अनुसार नब्बे के दशक में सूचना प्रौद्योगिकी आधारित उद्योगों की सफलता ने जिस अमेरिकी वित्तीय बुलबुले का निर्माण किया था, वह 1997 के बाद से क्रमशः पिचकता जा रहा है। स्पष्ट है कि वैश्वीकरण के परिणाम स्वरूप राष्ट्र–राज्य के अस्तित्व को चुनौती अथवा गंभीर खतरा उत्पन्न होने संबंधी भविष्यवाणी अभी तक गलत साबित हुई है। राष्ट्र–राज्य की संप्रभुता बदस्तूर कायम है तथा वैश्वीकरण की प्रक्रिया भी जारी है। इसलिए वैश्वीकरण के गुण –दोष, लाभ –हानि तथा परिणाम के बारे में जल्दबाजी में किसी निष्कर्ष तक पहुँचने की बात करना नादानी होगी।

टिप्पणी

1. एल्गोरिद्म शब्द अल– ख्वारिज्मी से मिलकर बना है।
2. एल्जेब्रा का आविष्कार ख्वारिज्मी की प्रसिद्ध पुस्तक 'अल –जब्र–वा–अल– मुकबिलाह' से हुआ है।
3. इस पुस्तक का नाम 'बज्रचेरिका प्रजनपरमित्तासूत्र' था।

सन्दर्भ

वालेन्सटर्न, इमैर्न,(1987) *द माडर्न वर्ल्ड सिस्टम,* न्यूयार्क, एकेडेमिक प्रेस

ग्लिस, लिण्डा (1980), *स्टेट एण्ड इकोनामिक डवलपमेण्ट,* वाशिंगटन डी0 सी0, इन्सटीट्यूट ऑफ इन्टरनेशनल इकोनामिक्स,

गोवा,जान (1994) *एलाईज एडवर्सरीज एण्ड इन्टरनेशनल ट्रेड,* प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ .5

लेनिन, वी0 आई0(1974) *इम्पीरीयलिज्मः द हाइएस्ट स्टेज आफ कैपिटेलिज्म,* न्यूयार्क, इन्टरनेशनल पब्लिशर्स

अमर्त्यसेन, (2002)''हाऊ टू जज ग्लोबलिज्म,'' *द अमेरिकन प्रास्पेक्ट,* भाग**13**, सं0 **1,**

चार्ल्स, डब्ल्यू0 केलि एण्ड विटकाफ आर0 यूजीन,(1997) *वर्ल्ड पालिटिक्स,* छठां संस्करण, न्यूयार्कः सेन्ट मार्टिन, पृष्ठ 149

जान एग्न्यू एण्ड स्टुवर्ट कार्ब्रिज,(1995) *मास्टरिंग स्पेस, हेजीमोनी, टेरीटरी एण्ड इन्टरनेशनल पोलिटिकल इकोनामी,* लंदन, रोल्टेज,पृ0 164–225।

लुईस,एलसी डी0 (1980) ''द इकोनोमिक्स आफ प्रापर्टी राइट्सः ए रिव्यू आफ द इविडेन्स'', *रिसर्च इनलाँ एण्ड इकोनोमिक्स,* भाग–**2**,

रामकृष्णा, ए0 के0 ; *नियोलिब्रलिज्म, ग्लोबलाइजेषन एण्ड रसिस्टेन्सः द केस आफ इण्डिया*

स्टिफेन गिल (1995), *''ग्लोबलाइजेषन, मार्केट सिविलाइजेषन एण्ड डिसिप्लिनरी नियो लिब्रालिज्य मिलेनियम,* भाग–**24,** संख्या **3**,पृष्ठ 339–403

ओवरबिक,हेन्क (1993), *स्ट्रक्चरिंग हेजीमोनी इन द ग्लोबल इकोनोमी, द राइट ऑफ ट्रान्सनेशनल नियोलिब्रलिज्म इन द 1990,* लंदन, न्यूयार्क रूटलेज

हण्टिग्टन,सैमुअल पी0 (1991), *द थर्ड वेबः डिमान्स्ट्रेशन इन द लेट ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी* ,नार्मनः यूनिवार्सिटी आफ ओकलाहोम प्रेस,पृ 30

राव, सी0 पी0(1998) *ग्लोबलाइजेशन, प्राइवेटाइजेशन एण्ड फ्री मार्केट इकोनामी,*वेस्ट कोट,सी टीः कोरम बुक्स,

ब्रायन एण्ड फेरेल (1987), *मार्केट अन बाउण्ड*

कैरोलिन, थामस (1997), *''ग्लोबलाइजेशन एण्ड द साउथ''* इन ग्लोबलाइजेशन एण्ड द साउथ, संस्करण, थामस कैरोलिन एण्ड पीटर बिल्किन,न्यू यार्क, सेण्ट मार्टिन प्रेस

इथान बी0 केप्स्टीन, *शेयरिग द वेल्थः वर्कर्स एण्ड द वर्ल्ड इकोनोमी* न्यू यार्कःनार्टन

शोलेट, जान ए0,(2000) ''ग्लोबलाइजेशनः ए क्रिटिकल इन्ट्रोडक्शन, न्यू यार्कः सेण्ट मार्टिन प्रेस, पृ 42

कोहेन, एडवर्ल्ड एस0 *मेकिग सेंन्स आफ ग्लोबलाइजेशनः कैन वी लर्न एनीथिंग फ्राम द कन्फ्यूजन*

कैस्टल, मैनुअल(1996), *द इन्फार्मेशन एजः इकोनोमी, सोसायटी एण्ड कल्चर,* भाग–3 आक्सफोड :ब्लैकवेल,1996–1998 3: 356।